[2010] 7 एस.सी.आर. 46

मेसर्स स्पीडलाइन एजेंसीज़

बनाम

मेसर्स टी. स्टेन्स एंड कंपनी लिमिटेड

(2010 की दीवानी अपील संख्या 4481)

14 मई, 2010

**[पी. सतशिवम एवं जे.एम. पंचाल, न्यायमूर्ति गण]**

*तमिलनाडु भवन (पट्टा एवं किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960—धारा 10(3)(क)(i), (iii)—किरायेदारों का निष्कासन—स्वयं उपयोग एवं अधिभोग के आधार पर निष्कासन—किराया नियंत्रक द्वारा तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी स्वीकृत—पुनरीक्षण याचिका लंबित रहने के दौरान पूर्व भूस्वामी का हस्तांतरणी कंपनी के साथ विलय—विलय की योजना उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकृत—निष्कासन आदेश का लाभ हस्तांतरणी कंपनी को—अधिकारिता—निर्णीत, हस्तांतरणी कंपनी निष्कासन आदेश के लाभ की अधिकारी है—जब कोई कंपनी विलय के कारण समाप्त हो जाती है, तो निष्कासन डिक्री के अधीन उसके अधिकार समामेलित कंपनी को निहित हो जाते हैं—डिक्री एक परिसंपत्ति है—पूर्व कंपनी की परिसंपत्ति समामेलित कंपनी में निहित होती है—व्यवसाय समामेलित कंपनी द्वारा जारी रखा जाएगा—यदि समामेलित कंपनी को उक्त लाभ से वंचित किया जाए, तो विलय का उद्देश्य विफल हो जाएगा—कंपनी अधिनियम, 1956—धारा 391 से 394—पश्चातवर्ती घटनाएँ।*

**भूस्वामी—यू.सी.एस. कंपनी—एक भवन की स्वामी थी जिसमें कुछ भाग रिक्त थे। उसने उक्त परिसर, रिक्त भाग सहित, अपीलकर्ता को आवास-सह-कार्यालय के रूप में उपयोग हेतु पाँच वर्ष की अवधि के लिए मासिक किराये पर पट्टे पर दिया। इस बीच, तमिलनाडु शहरी भूमि (सीलिंग एवं विनियमन) अधिनियम, 1978 प्रवर्तन में आया। उक्त अधिनियम के अंतर्गत भूस्वामी कंपनी को रिक्त भूमि के अधिग्रहण से छूट प्रदान की गई। किराया नियंत्रक ने न्यायोचित किराया निर्धारित किया और अपीलीय प्राधिकारी ने उसमें वृद्धि की। इसके पश्चात भूस्वामी कंपनी का नाम परिवर्तित होकर एस.टी.सी. कंपनी हो गया।**

एस.टी.सी. कंपनी ने तमिलनाडु भवन (पट्टा एवं किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960 की धारा 10(3)(क)(i) तथा (iii) के अंतर्गत अपने स्वयं के उपयोग एवं अधिभोग के आधार पर, आवासीय एवं अनावासीय प्रयोजनों के लिए, निष्कासन हेतु याचिका दायर की। किराया नियंत्रक ने याचिका स्वीकार कर ली। अपीलीय प्राधिकारी ने आदेश की पुष्टि की। आहत होकर अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। याचिका लंबित रहते हुए, विलय की योजना के अंतर्गत, कंपनी अधिनियम के अनुसार, एस.टी.सी. कंपनी का स्थानांतरण उत्तरदाता कंपनी में कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने उसी को स्वीकृति प्रदान की। वाद शीर्षक में संशोधन हेतु आवेदन स्वीकार किया गया। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी। अतः यह अपील दायर की गई।

अपील को खारिज करते हुए, न्यायालय ने—

अभिनिर्धारित किया: 1. वर्तमान मामला ऐसा है जिसमें निष्कासन का आदेश अत्यंत न्यायसंगत, उचित और समतामूलक है, जिसे दो प्राधिकारियों द्वारा पारित किया गया और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई। अतः इसमें हस्तक्षेप का कोई वैध आधार नहीं है। दूसरी ओर, प्राधिकारियों द्वारा तथा उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष एकरूप हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता-किरायेदार चार दशकों से अधिक समय से परिसर में बना हुआ है, कब्जा सौंपने के लिए 31.12.2010 तक का समय प्रदान किया जाता है। [कंडिका 34] [78-डी]

2.1. वर्तमान मामले में, मकान-मालिक द्वारा किरायेदार की निष्कासन के लिए याचिका 03.04.1987 को दायर की गई थी। कार्रवाई का कारण विलय से संबंधित नहीं है, चाहे वह बेदखली के आवेदन दाखिल करने से पहले हो या बाद में, चाहे वह निष्कासन आवेदन दायर करने से पूर्व का हो या पश्चात् का। किराया नियंत्रक ने 09.04.1992 को निष्कासन का आदेश पारित किया। किरायेदार की अपील का निपटारा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 10.04.2003 को किया गया। मकान-मालिक के अधिकारों का निर्धारण निष्कासन हेतु आवेदन दायर किए जाने की तिथि के अनुसार किया जाना है। निष्कासन के आदेश ने मकान मालिक के अधिकारों को स्पष्ट कर दिया। किरायेदार ने 18.08.2003 को उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की थी। पुनरीक्षण याचिका की लंबित अवस्था के दौरान, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत विलय का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा 26.02.2006 को पारित किया गया, जो एक पश्चवर्ती घटना है। पुनरीक्षण याचिका का निपटारा उच्च

न्यायालय द्वारा 05.08.2009 को किया गया। यदि पुनरीक्षण याचिका का निपटारा 26.02.2006 से पूर्व हो गया होता, तो यह तर्क उत्पन्न ही नहीं होता। पुनरीक्षण याचिका के निपटारे में हुई देरी से, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्टि की गई किराया नियंत्रक की डिक्री के अंतर्गत मकान-मालिक के निहित अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। आगे, पूर्ववर्ती मकान-मालिक का उत्तरदाता के साथ हुआ विलय मात्र किसी विशिष्ट पट्टाधीन संपत्ति के अंतरण तक सीमित नहीं था, बल्कि पूर्ववर्ती मकान-मालिक के संपूर्ण व्यवसाय का, जिसमें अधिगृहीत व्यवसाय के लिए पट्टाधीन परिसर की आवश्यकता भी सम्मिलित थी, अंतरण शामिल था। [कंडिका 15 एवं 16] [67-एफ-एच; 68-ए-डी]

2.2. सामान्य परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् मकान-मालिक को परिसर का कब्जा प्राप्त हो गया होता; किंतु अपीलीय न्यायालय से प्राप्त स्थगन आदेश के कारण किरायेदार परिसर पर काबिज़ बना रहा। ऐसी परिस्थितियों में, यह सुविख्यात सिद्धांत कि "न्यायालय का कोई भी कार्य किसी व्यक्ति को क्षति नहीं पहुँचाएगा", लागू होता है। अतः मकान-मालिक के उत्तराधिकारी किरायेदार द्वारा दायर अपील का पूर्णतः प्रतिवाद करने के हकदार होंगे। जब किसी कंपनी का विलय के कारण (चाहे परिसमापन सहित या बिना परिसमापन के) विघटन हो जाता है, तो निष्कासन डिक्री के अंतर्गत उसके अधिकार विलयित कंपनी में निहित हो जाते हैं। [कंडिका 18] [69-डी-एफ]

*शकुंतला बाई एवं अन्य बनाम नारायण दास एवं अन्य* (2004) 5 एस.सी.सी. 772; *उषा पी. कुवेलकर एवं अन्य बनाम रवींद्र सुबराई दालवी* (2008) 1 एस.सी.सी. 330; *गया प्रसाद बनाम प्रदीप श्रीवास्तव* (2001) 2 एस.सी.सी. 604 — संदर्भित।

2.3. किराया अधिनियमों द्वारा शासित मामलों में, बाद की घटनाओं को ध्यान में रखना, इस तरह के मामले में मकान मालिकों के लिए कठिनाई पैदा करेगा। [कंडिका 22] [72-जी]

*श्रीमती फूल रानी एवं अन्य बनाम श्री नौबत राय अहलूवालिया,* (1973) एस.सी.सी. 688; *जोगिंदर पाल बनाम नवल किशोर बहल,* (2002) 5 एस.सी.सी. 397; *लछमेश्वर प्रसाद शुक्ल एवं अन्य बनाम केश्वर लाल चौधरी एवं अन्य,* ए.आई.आर. 1941 एफ.सी. 5 — संदर्भित।

2.4. वर्तमान मामले में, कंपनी के विलय की पश्चवर्ती घटना उच्च न्यायालय में

पुनरीक्षण की लंबितावस्था के दौरान घटी। तमिलनाडु भवन (पट्टा एवं किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960 की धारा 25 के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण में, न्यायालय सीमित अधिकारिता का प्रयोग करता है और अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता। [कंडिका 24 एवं 25] [73-ई, जी]

*मेसर्स श्री राजा लक्ष्मी डाइंग वर्क्स एवं अन्य बनाम रंगास्वामी चेट्टियार,* (1980) 4 एस.सी.सी. 259 — संदर्भित।

2.5. "अपने स्वयं के उपयोग/अधिभोग के लिए" इस अभिव्यक्ति की व्यापक रूप से व्याख्या की जानी चाहिए और इसे विस्तृत एवं उदार अर्थ दिया जाना चाहिए। जब कोई कंपनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है और किसी अन्य कंपनी के साथ विलय करती है, तो यह भी "अपने स्वयं के उपयोग" का ही एक मामला होगा। यदि कोई मकान-मालिक, जो एक कंपनी है, अपनी संपत्ति को अपने ही उपयोग में लाकर किसी अन्य कंपनी के साथ विलय के माध्यम से अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने में असमर्थ हो, तो यह अन्यायपूर्ण, अनुचित और अविवेकपूर्ण होगा। आगे, किराया नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जिससे विधायिका का उद्देश्य निष्फल हो जाए। ऐसे मामलों में, जहाँ मकान-मालिक अपने स्वयं के उपयोग के लिए परिसर की आवश्यकता के कारण किसी अन्य कंपनी के साथ विलय करता है और अपने व्यवसाय का विस्तार करता है, किराया नियंत्रण विधि का कंपनी अधिनियम के प्रावधानों से टकराव हो सकता है। कंपनी अधिनियम और किराया नियंत्रण अधिनियम की समन्वित रूप से व्याख्या की जानी चाहिए और ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जिससे एक अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार दूसरे अधिनियम के कारण नष्ट हो जाए। [कंडिका 27] [74-ई-जी]

2.6. निष्कासन आदेश पारित होने के पश्चात् मकान-मालिक की मृत्यु स्वतः डिक्री के अंतर्गत अर्जित अधिकार को नष्ट नहीं करती। वे मामले, जिनमें किरायेदार के पक्ष में पश्चवर्ती घटना को ध्यान में रखा गया है, ऐसे मामले हैं जहाँ अपील या पुनरीक्षण की लंबित अवस्था के दौरान मकान-मालिक की आवश्यकता पूर्णतः संतुष्ट हो गई हो या समाप्त हो गई हो। वर्तमान मामले में, मकान-मालिक की आवश्यकता अपने स्वयं के व्यवसाय तथा अपने कर्मचारियों के आवासीय प्रयोजनों के लिए थी। वह आवश्यकता स्थानांतरित कंपनी के संबंध में भी बनी रहती है, क्योंकि स्थानांतरक कंपनी का संपूर्ण व्यवसाय स्थानांतरित कंपनी में स्थानांतरित हो गया था। कंपनी की आवश्यकता न तो पूरी हुई है और न ही समाप्त हुई है।

निष्कासन का अधिकार पहले ही एक ऐसी डिक्री में परिणत हो चुका है, जिसमें कंपनी ने विलय के पश्चात् अनैच्छिक असाइनमेंट के माध्यम से उत्तराधिकार प्राप्त किया है। चूँकि निष्कासन की डिक्री स्थगन के अधीन थी, अतः उसका निष्पादन नहीं किया जा सका। एक बार स्थगन हट जाने या समाप्त हो जाने पर, उत्तरदाता डिक्री के निष्पादन का अधिकारी होगा। वर्तमान मामले में, विलय आदेश ने उक्त अधिकार को भी संरक्षित रखा है। [कंडिका 28] [74-एच; 75-ए-डी]

2.7. विलय की योजना की धारा 1.7 के अनुसार, सभी परिसंपत्तियाँ स्थानांतरित कंपनी में निहित हो जाती हैं। धारा 6 के अनुसार, किसी भी विषय के संबंध में कोई भी वाद, याचिका, अपील या अन्य कार्यवाही उक्त परिसंपत्तियों/दायित्वों के स्थानांतरण के कारण या योजना में निहित किसी बात के कारण समाप्त नहीं होगी और न ही प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगी, बल्कि ऐसी कार्यवाहियाँ उसी प्रकार और उसी सीमा तक जारी रखी, आगे बढ़ाई तथा प्रवर्तित की जा सकती हैं अथवा स्थानांतरित कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध उसी प्रकार और उसी सीमा तक जारी रखी, आगे बढ़ाई तथा प्रवर्तित की जा सकती हैं, जैसा कि योजना न बनाई गई हो। इसी को ध्यान में रखते हुए, विलय योजना में दिए गए प्रावधानों और आदेश 21 नियम 16 दं. प्र. सं. के संचालन के आधार पर, डिक्री धारक को डिक्री का निष्पादन करने वाला माना जाता है। अधिनियम की धारा 18 यह प्रावधान करती है कि निष्कासन का आदेश नियंत्रक द्वारा निष्पादित किया जाएगा, यदि ऐसा आदेश दीवानी न्यायालय का आदेश हो, और इस प्रयोजन के लिए नियंत्रक को दीवानी न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। आदेश के निष्पादन के प्रयोजनार्थ, दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियाँ किराया नियंत्रक में निहित कर दी गई हैं। अतः आदेश 21 नियम 16, दं. प्र. सं. का सिद्धांत लागू होगा। किसी भी स्थिति में, दं. प्र. सं. के वे प्रावधान, जो सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाते हैं अथवा न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तिसंगत प्रक्रिया सुनिश्चित करते हैं तथा अधिनियम से टकराव नहीं करते, निष्कासन आदेश के निष्पादन पर लागू होंगे। [कंडिका 28] [75-डी-एच; 76-ए]

*हसमत राय एवं अन्य बनाम रघुनाथ प्रसाद* (1981) 3 एस.सी.सी. 103; *सरस्वती इंडस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड बनाम सी.आई.टी.* 1990 (पूरक) एस.सी.सी. 675; *हिंदुस्तान लीवर एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य* (2004) 9 एस.सी.सी. 438 — अप्रयोज्य ठहराए गए।

*जनरल रेडियो एंड अप्लायंसेज कंपनी लिमिटेड एवं अन्य बनाम विधिक प्रतिनिधि द्वारा एम.ए. खदर (मृत)* **(1986) 2 एस.सी.सी. 656;** *सिंगर इंडिया लिमिटेड बनाम चंदर मोहन चड्ढा एवं अन्य* **(2004) 7 एस.सी.सी. 1 — संदर्भित।**

**2.8. किरायेदार को निष्काषित करने का मकान-मालिक का अधिकार डिक्री में विलीन हो गया था। आगे, विलय निष्कासन की डिक्री पारित होने के काफी बाद हुआ और अधिकार पहले ही निष्कासन की डिक्री के अंतर्गत स्थापित होकर उसमें विलीन हो चुके थे। किरायेदार एक विशाल संपत्ति के कब्जे में था, जिसमें 5,274 वर्ग फुट निर्मित क्षेत्र वाला एक बड़ा भवन तथा उससे संबद्ध स्थान, अर्थात् कुल 61,872 वर्ग फुट माप की रिक्त भूमि सम्मिलित थी, जिस पर वह वर्ष 1965 से 45 वर्ष से अधिक की अवधि तक काबिज़ रहा। प्रारंभ में अपीलकर्ता भवन के लिए रुपये 400/- तथा फर्नीचर एवं फिटिंग्स के लिए रुपये 300/- किराया अदा कर रहा था, जिसे 1970 में क्रमशः रुपये 400/- और रुपये 475/- कर दिया गया। किराया नियंत्रक ने उचित किराया रुपये 6,465/- निर्धारित किया, जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा बढ़ाकर रुपये 7,852/- कर दिया गया। [कंडिका 29] [76-बी-डी]**

**2.9. पूर्ववर्ती कंपनी की परिसंपत्तियाँ समामेलित कंपनी में निहित हो गई थीं। एक डिक्री एक परिसंपत्ति का गठन करती है। उक्त पूर्ववर्ती कंपनी की परिसंपत्ति समामेलित कंपनी पर स्थानांतरित हो गई है। निष्कासन पूर्ववर्ती कंपनी की अपनी आवश्यकता के आधार पर की गई थी। उक्त व्यवसाय को समामेलित कंपनी द्वारा ही जारी रखा जाएगा। यदि समामेलित कंपनी को उक्त लाभ से वंचित किया जाता है, तो यह समामेलन के उद्देश्य को ही विफल कर देगा तथा कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित समामेलन के आदेश को निष्फल कर देगा। [कंडिका 30] [78-इ-जी]**

**2.10. भवन के साथ पट्टे पर दी गई रिक्त भूमि ही सीमा अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों की विषय-वस्तु है। भूस्वामी ने अधिनियम की धारा 21 के अधीन छूट का आदेश प्राप्त किया। यह छूट स्पष्ट रूप से उद्योग के विस्तार के लिए प्रदान की गई थी, जो एक लोक उद्देश्य है। धारा 21 के अंतर्गत केवल तब, जब लोकहित की आवश्यकता संतुष्ट होती है, सरकार को छूट प्रदान करने की शक्ति होती है। जब भूस्वामी ने सीमा अधिनियम की धारा 21 के अधीन छूट का आदेश प्राप्त किया, तब किरायेदार ने सरकार के समक्ष छूट को निरस्त करने तथा उक्त भूमि को अपने पक्ष में आवंटित करने हेतु आवेदन किया। उसने छूट के आदेश को रिट याचिका के माध्यम से भी चुनौती दी, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर**

दिया गया। (कंडिका 31) [76-जी-एच; 77-ए-बी]

2.11. धारा 10 की उपधारा 3 का प्रथम परंतुक लंबित पुनरीक्षणों पर लागू नहीं होता। यह केवल किराया नियंत्रक के समक्ष किए गए आवेदन पर ही लागू होता है। परंतुक यह निर्देश देता है कि मकान-मालिक "भवन का अधिभोग नहीं कर रहा है"। भले ही मकान-मालिक अन्य संपत्तियों का स्वामी हो, किंतु यदि वह उनका अधिभोग नहीं कर रहा है, तो परंतुक लागू नहीं होगा। किराया अधिनियम स्वामित्व या शीर्षक से नहीं, बल्कि केवल अधिभोग के अधिकार से संबंधित है। अन्यथा भी, यह न्यायालय उक्त नई दलील को प्रथम बार उठाने की अनुमति नहीं देगा। किसी भी स्थिति में, अतिरिक्त तथ्यों और दस्तावेजों को अभिलेख पर रखने की अनुमति के लिए आवेदन में यह दलील दी गई है कि विलयित कंपनी के पास अन्य भूमि है, यह अभिकथित नहीं किया गया है कि वह ऐसी भूमि के कब्जे में है; अतः धारा 10(3)(iii) का परंतुक लागू नहीं होता। (कंडिका 32) [77-डी-एच]

2.12. अधिनियम का उद्देश्य कब्जे में रह रहे किरायेदार का अनुचित निष्कासन को रोकना तथा किरायों को नियंत्रित करना है। इसी प्रकार, जब मकान-मालिक अपनी स्वयं की आवश्यकता के लिए संपत्ति चाहता है, तो वह मकान-मालिक के अन्य संपत्तियों के कब्जे की स्थिति को ध्यान में रखता है, न कि उन अन्य संपत्तियों के स्वामित्व को, जो उसके कब्जे में नहीं हैं। अधिनियम में युक्तिसंगत आधारों पर, जैसा कि अधिनियम में प्रावधानित है, निष्कासन की अनुमति दी गई है। ऐसे भी मामले हो सकते हैं जहाँ किरायेदार की निष्कासन युक्तिसंगत हो, किंतु वह आवश्यकता अधिनियम की धारा 10 के किसी एक प्रावधान के अंतर्गत कठोरता से न आती हो। अतः अधिनियम की धारा 29 सरकार को ऐसे मामलों में भवन को छूट प्रदान करने में सक्षम बनाती है, ताकि मकान-मालिक सामान्य दीवानी उपाय के रूप में वाद के माध्यम से किरायेदार की निष्कासन का अधिकारी हो सके। [कंडिका 33] [77-एच ; 78-ए-सी]

निर्णयन विधि सन्दर्भ:

| | | |
|---|---|---|
| (1981) 3 एस सी सी 103 | अप्रयोज्य ठहराई गई | कंडिका 13 |
| 1990 (पूरक) एस सी सी 675 | अप्रयोज्य ठहराई गई | कंडिका 13 |
| (2004) 9 एस सी सी 438 | अप्रयोज्य ठहराई गई | कंडिका 13 |
| (1986) 2 एस सी सी 656 | संदर्भित | कंडिका 14 |
| (2004) 7 एस सी सी 1 | संदर्भित | कंडिका 14 |

| | | |
|---|---|---|
| **(2004) 5 एस सी सी 772** | **संदर्भित** | **कंडिका 17** |
| **(2008) 1 एस सी सी 330** | **संदर्भित** | **कंडिका 19** |
| **(2001) 2 एस सी सी 604** | **संदर्भित** | **कंडिका 20** |
| **(1973) 1 एस सी सी 688** | **संदर्भित** | **कंडिका 21** |
| **(2002) 5 एस सी सी 397** | **संदर्भित** | **कंडिका 22** |
| **ए.आई.आर. 1941 एफ.सी. 5** | **संदर्भित** | **कंडिका 23** |
| **(1980) 4 एस.सी.सी. 259** | **संदर्भित** | **कंडिका 25** |

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2010 की दीवानी अपील संख्या 4481

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 2003 की दीवानी पुनरीक्षण याचिका (एन.पी.डी.) संख्या 1729 में पारित दिनांक 05.08.2009 के निर्णय एवं आदेश से

अपीलकर्ता की ओर से: के.के. वेणुगोपाल, वुनीत सुब्रमणि, लिज़ मैथ्यू।

उत्तरदाता की ओर से: के. परासरण, के.वी. विश्वनाथन, अनिल कौशिक, अभिषेक कौशिक, मैरी मित्ज़ी, गोपाल सिंह चौहान, शिव प्रकाश पांडे।

न्यायालय का निर्णय **पी. सतशिवम, न्यायमूर्ति** द्वारा दिया गया—

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील दिनांक 05.08.2009 को मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 2003 की दीवानी पुनरीक्षण याचिका (एन.पी.डी.) संख्या 1729 में पारित अंतिम निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा दायर दीवानी पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया।

3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं—

(क) अपीलकर्ता ने टी.एस. संख्या 1357 में स्थित वाद परिसर लिया (जिसका पुराना संख्या 6/499 तथा नया संख्या 8/499 है), जो त्रिची रोड, कोयंबटूर पर स्थित है, जिसका कुल क्षेत्रफल 1.4 एकड़, अर्थात 61,872 वर्ग फुट है, तथा जिस पर 5,274 वर्ग फुट निर्मित क्षेत्रफल वाला एक भवन स्थित है। उक्त परिसर दिनांक 17.11.1965 के पट्टा विलेख के अंतर्गत मेसर्स यूनाइटेड कॉफी सप्लाई कंपनी लिमिटेड को आवास-सह-कार्यालय के उपयोग

हेतु पाँच वर्षों की अवधि के लिए ₹400/- प्रतिमाह के किराये पर पट्टे पर दिया गया था। उक्त अवधि की समाप्ति पर, पट्टा आगे भी दिनांक 01.10.1970 के पट्टा विलेख के अंतर्गत पाँच वर्षों की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया। 1.10.1975 से पट्टा नवीनीकृत न होने पर, अपीलकर्ता ने दिनांक 1.10.1970 के पट्टा समझौते में नवीकरण खंड के विशिष्ट निष्पादन के लिए ओ.एस. संख्या 209/1976 में मुकदमा दायर किया। उक्त मुकदमे में, दिनांक 12.04.1978 को एक समझौता हुआ जिसके तहत अपीलकर्ता ने 1.10.1975 से 1200/- रुपये का उचित किराया देने पर सहमति व्यक्त की।

(ख) इस बीच, तमिलनाडु सरकार ने दिनांक 17.05.1978 को तमिलनाडु शहरी भूमि (सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1978 (जिसे आगे "सीमा अधिनियम" कहा गया है) प्रवर्तन में लाया। उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत, किसी व्यक्ति द्वारा धारित की जा सकने वाली रिक्त भूमि की सीमा निर्धारित की गई तथा सरकार को सीमा से अधिक (अधिशेष) भूमि का अधिग्रहण करने का अधिकार प्रदान किया गया। दिनांक 13.09.1978 को पूर्व भूस्वामी कंपनी ने अधिशेष रिक्त भूमि के अधिग्रहण से छूट हेतु आवेदन किया। दिनांक 04.11.1981 को पूर्व भूस्वामी कंपनी को लोकहित के आधार पर सीमा अधिनियम की धारा 21(1)(क) के अंतर्गत, शासनादेश संख्या 2900 के माध्यम से, आंशिक छूट प्रदान की गई। 25.06.1986 को, राजस्व विभाग द्वारा जारी जी.ओ. (आरटी) संख्या 852 के माध्यम से, पहले दी गई आंशिक छूट की समीक्षा की गई और सीमा अधिनियम की धारा 21 (1) (ए) के तहत वाद परिसर की पूरी सीमा तक विस्तारित की गई, अर्थात् जनहित के आधार पर।

(ग) वर्ष 1984 में, मकान-मालिक-कंपनी ने दिनांक 01.10.1980 से पूर्वलाभी रूप से ₹9,500/- मासिक किराया निर्धारित किए जाने का दावा करते हुए 1984 की आर.सी.ओ.पी. संख्या 397 दायर की। तथापि, किराया नियंत्रक ने दिनांक 18.10.1994 के आदेश द्वारा उचित किराया ₹6,465/- दिनांक 01.10.1980 से निर्धारित किया। अपीलकर्ता ने इसके विरुद्ध 1994 की आर.सी.ए. संख्या 171 दायर की, जिसके अंतर्गत किराया दिनांक 19.12.2001 से ₹7,852/- निर्धारित किया गया, जिसे वर्तमान में अदा किया जा रहा है। दिनांक 15.09.1985 को मकान-मालिक-कंपनी का नाम मेसर्स यूनाइटेड कॉफी सप्लाई कंपनी लिमिटेड से बदलकर स्टेन्स टी एंड कॉफी लिमिटेड कर दिया गया।

(घ) स्टेन्स टी एंड कॉफी लिमिटेड ने 3 अप्रैल, 1987 को तमिलनाडु भवन (पट्टा

और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960 (जिसे आगे 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 10(3)(क)(i) और (iii) के तहत आरसीओपी संख्या 105/1987 दायर की, इस आधार पर कि उसे अपने स्वयं के उपयोग और कब्जे के लिए तथा अपने कर्मचारियों को आवासीय आवास प्रदान करने के लिए भवन और परिसर की आवश्यकता थी और एजेंसी, गोदामों और अनुसंधान एवं विकास भवन, कार्यालय क्वार्टर और कर्मचारियों के लिए गैरेज, साइकिल स्टैंड, कर्मचारी मनोरंजन क्लब, सामुदायिक हॉल आदि जैसी सुविधाओं के लिए रिक्त क्षेत्रों की आवश्यकता थी। किराया नियंत्रक ने अपने दिनांक 09.04.1992 के आदेश द्वारा याचिका को स्वीकार किया और अपीलकर्ता की निष्कासन का निर्देश दिया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी तथा कोयंबटूर के द्वितीय अतिरिक्त अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष 1992 की आर.सी.ए. संख्या 42 के रूप में अपील दायर की, जिसे दिनांक 10.04.2003 को खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश के विरुद्ध, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की सी.आर.पी. संख्या 1729 दायर की। उक्त सी.आर.पी. के उच्च न्यायालय में लंबित रहने के दौरान, समामेलन की एक योजना के अंतर्गत, मेसर्स स्टेन्स टी एंड कॉफी लिमिटेड को दिनांक 01.04.2005 से कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 से 394 के अंतर्गत मेसर्स टी. स्टेन्स एंड कंपनी लिमिटेड में अंतरणित कर दिया गया, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विधिवत् अनुमोदित किया गया। तत्पश्चात, वाद शीर्षक में संशोधन हेतु एक आवेदन दायर किया गया, जिसे भी उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.07.2009 के आदेश से स्वीकार कर लिया गया। दिनांक 05.08.2009 को उच्च न्यायालय ने यहां अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त अपील प्रस्तुत की है।

4. अपीलकर्ता–किरायेदार की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के.के. वेणुगोपाल तथा उत्तरदाता–मकान-मालिक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरण को सुना गया।

5. अपीलकर्ता–किरायेदार की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वेणुगोपाल ने मुख्यतः यह प्रस्तुत किया कि मूल किराया नियंत्रण याचिका का उत्तरदाता के साथ समामेलन हो जाने पर, नई इकाई अधिनियम की धारा 10(3)(क)(i) तथा (iii) के अंतर्गत निष्कासन की कार्यवाही को जारी रखने की अधिकारी नहीं थी, क्योंकि नई इकाई की आवश्यकता भिन्न होगी। इसके अतिरिक्त, यद्यपि इसे अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष गंभीरता से नहीं उठाया गया था, उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि उत्तरदाता के स्वामित्व वाली अन्य आवासीय एवं

अनावासीय इमारतें नई इकाई को निष्कासन के आदेश का लाभ दावा करने से अयोग्य बनाती हैं।

6. दूसरी ओर, उत्तरदाता–मकान-मालिक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरण ने, कंपनी न्यायाधीश द्वारा अनुमोदित समामेलन योजना तथा अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया कि मकान-मालिक कंपनी का किसी अन्य कंपनी के साथ विलय हो जाने के पश्चात्, किराया नियंत्रण अधिनियम अथवा संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत मकान-मालिक के किसी भी अधिकार का हनन नहीं होता। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि यहां पूर्ववर्ती मकान-मालिक का उत्तरदाता के साथ हुआ समामेलन केवल किसी विशिष्ट पट्टाधारित संपत्ति के अंतरण तक सीमित नहीं था, बल्कि अधिग्रहित व्यवसाय के लिए आवश्यक पट्टाधारित परिसरों सहित पूर्ववर्ती मकान-मालिक के संपूर्ण व्यवसाय का अंतरण सम्मिलित था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि इसके पश्चात् घटित घटनाएँ, अर्थात् उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान हुआ विलय, न तो इस न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान में लिए जाने योग्य विषय हैं और न ही अधीनस्थ न्यायालयों पर कोई बाध्यकारी निर्देश हैं। उन्होंने विस्तार से यह भी प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में मकान-मालिक को उक्त परिसर अपने व्यवसाय के लिए तथा अपने कर्मचारियों के आवासीय प्रयोजनों के लिए आवश्यक थे, और यह आवश्यकता अंतरक कंपनी के संपूर्ण व्यवसाय के अंतरण के कारण अन्तरिति कंपनी के लिए भी निरंतर बनी हुई है।

7. हमने सभी प्रासंगिक अभिलेखों तथा परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है।

8. इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि स्टेन्स टी एंड कॉफी लिमिटेड ने अधिनियम की धारा 10(3)(क)(i) तथा (iii) के अंतर्गत, संबंधित परिसरों के संबंध में अपने स्वयं के उपयोग एवं आवासीय तथा अनावासीय प्रयोजनों हेतु कब्जा प्राप्त करने और किरायेदार की निष्कासन के लिए, किराया नियंत्रक के समक्ष याचिका दायर की है। संबंधित प्रावधान निम्नानुसार उद्धृत किए जाते हैं—

"*10. किरायेदारों की निष्कासन—* (1) xxx xxxx

(2) xxxxx"

(3) (क) मकान मालिक, खंड (घ) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, नियंत्रक से

किरायेदार को मकान मालिक को भवन का कब्जा सौंपने का आदेश देने के लिए आवेदन कर सकता है।

(i) यदि वह आवासीय भवन हो, और मकान-मालिक को उसकी स्वयं की निवास हेतु अथवा उसके परिवार के किसी सदस्य के निवास हेतु उसकी आवश्यकता हो, तथा वह या उसके परिवार का कोई सदस्य संबंधित नगर या ग्राम में अपने स्वामित्व के किसी आवासीय भवन में निवास न कर रहा हो;

(ii) xxxx

(iii) यदि वह कोई अन्य अनावासीय भवन हो, और मकान-मालिक या उसके परिवार का कोई सदस्य उस व्यवसाय के प्रयोजन से, जिसे वह या उसके परिवार का कोई सदस्य चला रहा है, संबंधित नगर या ग्राम में अपने स्वामित्व के किसी अनावासीय भवन में कब्जे में न हो; ..."

9. अभिलेखों का विश्लेषण करने के पश्चात, किराया नियंत्रक तथा अपीलीय प्राधिकारी ने, भूस्वामी के मामले को स्वीकार करते हुए, समवेत रूप से यह पाया कि निष्कासन हेतु वास्तविक आवश्यकता विद्यमान है और वर्तमान प्रकरण में किरायेदार-अपीलकर्ता के विरुद्ध निष्कासन का आदेश पारित किया। यह उल्लेखनीय है कि किराया नियंत्रण याचिका दिनांक 03.04.1987 को दायर की गई थी और किराया नियंत्रक ने दिनांक 09.04.1992 को निष्कासन का आदेश पारित किया। किरायेदार द्वारा दायर अपील को किराया नियंत्रण अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 10.04.2003 को खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात, किरायेदार ने अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत दिनांक 18.08.2003 को उच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी पुनरीक्षण याचिका दायर की। उक्त दीवानी पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के दौरान, दिनांक 26.06.2006 के आदेश द्वारा कंपनी न्यायालय ने विलय योजना को अनुमोदित कर अंतिम रूप दिया। इसके पश्चात, दीवानी पुनरीक्षण याचिका में वाद-शीर्षक में संशोधन हेतु आवेदन किरायेदार द्वारा दायर किया गया, जिसे स्वीकृत कर लिया गया।

10. अपील के दस्तावेज़ों में दर्ज विलय योजना में कई परिभाषाएँ और खंड शामिल हैं। खंड 1.1 में "अंतरक कंपनी" और खंड 1.2 में "अन्तरिति कंपनी" को परिभाषित किया गया है। अन्य खंडों में, हम खंड 1.5 और 6 पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, जो इस प्रकार हैं:

"1.5. *'प्रभावी तिथि'* से आशय वह तिथि है, जिस दिन मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा

योजना को स्वीकृत करते हुए पारित आदेश की प्रमाणित प्रति—जिसके द्वारा परिसंपत्तियाँ, संपत्तियाँ, देयताएँ, अधिकार, कर्तव्य, दायित्व तथा अंतरक कंपनी के व्यवसाय का अन्तरिति कंपनी में निहित किया गया है—तमिलनाडु के कंपनी रजिस्ट्रार के समक्ष, आवश्यक सहमतियाँ, अनुमोदन, अनुमतियाँ, प्रस्ताव, स्वीकृतियाँ तथा आवश्यक आदेश प्राप्त करने के पश्चात्, दायर की जाती है।"

"6. *विधिक कार्यवाहियाँ*— प्रभावी तिथि से, यदि किसी भी प्रकार का कोई वाद, याचिका, अपील, पुनरीक्षण अथवा अन्य कोई कार्यवाही (जिसे आगे 'कार्यवाहियाँ' कहा गया है), किसी भी क़ानून के अंतर्गत, अंतरक कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध, जो अंतरण तिथि पर लंबित हो अथवा भविष्य में संस्थित की जाए (चाहे प्रभावी तिथि से पूर्व या पश्चात्), किसी ऐसे विषय के संबंध में जो प्रभावी तिथि से पूर्व उत्पन्न हुआ हो और जो अंतरक कंपनी तथा अन्तरिति कंपनी के बीच सहमत रूप से अंतरित उपक्रम से संबंधित हो, तो वह अंतरक कंपनी की उक्त परिसंपत्तियों/देयताओं के अंतरण या योजना में निहित किसी अन्य कारण से न तो समाप्त होगी, न ही बंद की जाएगी और न ही किसी प्रकार से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगी; बल्कि ऐसी कार्यवाहियाँ उसी प्रकार और उसी सीमा तक अन्तरिति कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी रखी जा सकती हैं, अभियोजित की जा सकती हैं तथा प्रवर्तित की जा सकती हैं, जिस प्रकार और जिस सीमा तक वे योजना के न बनाए जाने की स्थिति में अंतरक कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी, अभियोजित तथा प्रवर्तित की जातीं।"

खंड 15 यह स्पष्ट करती है कि अंतरक कंपनी को प्रभावी तिथि से या मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित किसी अन्य तिथि से, बिना परिसमापन किए, भंग कर दिया जाएगा।

11. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391 से 394 के साथ धारा 79 के तहत समामेलन योजना को मंजूरी देने के लिए दायर कंपनी याचिका का विश्लेषण करने और सभी पहलुओं को संतुष्ट करने के बाद, उच्च न्यायालय ने दिनांक 26.06.2006 के आदेश द्वारा दिनांक 01.04.2005 के हस्तांतरण से योजना को मंजूरी दी और तदनुसार याचिकाओं को स्वीकार कर लिया।

12. कंपनी न्यायालय से आदेश प्राप्त करने के पश्चात्, अन्तरिति कंपनी ने किरायेदार द्वारा दायर लंबित दीवानी पुनरीक्षण याचिका में वाद शीर्षक में संशोधन हेतु एक याचिका

दायर की, और इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि उक्त याचिका को, किरायेदार की आपत्ति के अधीन, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा स्वीकार कर लिया गया। उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति के प्रकाश में, अब यह विचार किया जाना है कि मूल मकान-मालिक का अन्तरिति कंपनी के साथ समामेलन हो जाने के पश्चात्, क्या अन्तरिति कंपनी किराया नियंत्रक द्वारा अधिनियम की धारा 10(3)(क)(i) तथा (iii) के अंतर्गत पारित, अपीलीय प्राधिकारी एवं उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित निष्कासन आदेश का लाभ प्राप्त करने की अधिकारी है।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वेणुगोपाल ने प्रस्तुत किया कि निष्कासन का आदेश व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर पारित किया गया था और ऐसी आवश्यकता का वाद के अंतिम निर्णय तक निरंतर बना रहना आवश्यक है। इसी के आलोक में, उनके अनुसार, अपीलीय/पुनरीक्षणीय न्यायालय को पश्चवर्ती घटनाओं का संज्ञान लेना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए कि मकान-मालिक की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है। उक्त प्रतिपादन के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया—

(i) *हसमत राय एवं एक अन्य बनाम रघुनाथ प्रसाद* [(1981) 3 एस.सी.सी. 103], में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

> "14. ..... यदि कोई मकान-मालिक अपने स्वयं के आवासीय उपयोग हेतु आवासीय प्रयोजन के लिए पट्टे पर दिए गए परिसर पर वास्तविक एवं सद्भावनापूर्ण आवश्यकता के आधार पर कब्जा चाहता है, तो वह ऐसा कर सकता है और कब्जा प्राप्त कर सकता है। वह अनावासीय प्रयोजनों के लिए भी परिसर का कब्जा प्राप्त करने का समान रूप से अधिकारी है, यदि वह अपना व्यवसाय जारी रखना या प्रारंभ करना चाहता है। यदि वह व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर निष्कासन की कार्यवाही प्रारंभ करता है, तो उसे न्यायालय में वाद की शुरुआत की तिथि पर अपनी आवश्यकता का कथन और प्रमाण प्रस्तुत करने में सक्षम होना चाहिए, जो उसका वाद-हेतुक होगा। किंतु यह पर्याप्त नहीं है। यह आवश्यकता वाद की समस्त कार्यवाही के दौरान निरंतर बनी रहनी चाहिए और डिक्री की तिथि पर भी विद्यमान होनी चाहिए; और जब हम डिक्री कहते हैं, तो उसका आशय अंतिम न्यायालय की डिक्री से है। कोई भी अन्य दृष्टिकोण किराया प्रतिबंध अधिनियम जैसे कल्याणकारी विधान के लाभकारी प्रावधानों को निष्फल कर देगा। यदि मकान-मालिक वाद प्रारंभ किए जाने के समय अपनी आवश्यकता सिद्ध करने में सक्षम है और विचारण न्यायालय की

डिक्री की तिथि तक तथा तत्पश्चात् किरायेदार द्वारा दायर अपील के लंबित रहने के दौरान भी वह आवश्यकता बनी रहती है, किंतु यदि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के अनुसार, इस बीच मकान-मालिक को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त परिसर का कब्जा प्राप्त हो जाता है, तो किरायेदार को यह प्रदर्शित करने में सक्षम होना चाहिए कि पश्चवर्ती घटनाओं ने वादी के दावे को निष्प्रभावी कर दिया है, क्योंकि उसके विरुद्ध निष्कासन की डिक्री या आदेश पारित किया गया है और पश्चवर्ती घटनाओं को संज्ञान में लेने के लिए कोई अतिरिक्त साक्ष्य ग्राह्य नहीं था। जब डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील का वैधानिक अधिकार प्रदान किया जाता है और उस अधिकार के प्रयोग में अपील दायर की जाती है, तो डिक्री या आदेश अंतिम नहीं रहता। "किरायेदार" की परिभाषा से जो व्यक्ति अपवर्जित किया गया है, वह वही व्यक्ति है जिसके विरुद्ध निष्कासन की डिक्री या आदेश पारित किया गया है और वह डिक्री या आदेश इस अर्थ में अंतिम हो गया है कि वह किसी न्यायालय या न्यायालयों के पदानुक्रम द्वारा आगे विचारण के लिए खुला नहीं है। अपील वाद की निरंतरता होती है। अतः जिस किरायेदार के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा निष्कासन की डिक्री पारित की गई है, वह अपील दायर करने पर संरक्षण से वंचित नहीं होता, क्योंकि यदि अपील स्वीकार की जाती है तो वैधानिक संरक्षण की छत्रछाया उसे संरक्षण प्रदान करती है। इसलिए यह निर्विवाद है कि "किरायेदार" की परिभाषा में उल्लिखित निष्कासन की डिक्री या आदेश का अर्थ अंतिम डिक्री या अंतिम आदेश ही होगा। एक बार जब डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील दायर की जाती है, तो अपील वाद की निरंतरता होने के कारण, अपीलीय चरण पर भी मकान-मालिक की आवश्यकता का निरंतर अस्तित्व सिद्ध किया जाना आवश्यक है। यदि किरायेदार यह प्रदर्शित करने की स्थिति में है कि पश्चवर्ती घटनाओं के कारण अब वह आवश्यकता या जरूरत विद्यमान नहीं रही है, तो उसे ऐसी घटनाओं की ओर संकेत करने का अधिकार होगा और अपीलीय न्यायालय सहित न्यायालय को उनका परीक्षण, मूल्यांकन तथा निर्णय करना होगा। अन्यथा, मकान-मालिक को एक अनुचित लाभ प्राप्त हो जाएगा। एक उदाहरण से हमारा आशय स्पष्ट होगा। कोई मकान-मालिक वाद की तिथि पर तथा विचारण न्यायालय की डिक्री की तिथि पर किराए पर दिए गए परिसर के कब्जे की आवश्यकता प्रदर्शित करने की स्थिति में था। जब मामला किरायेदार के आग्रह पर अपील में लंबित था, तब मकान-मालिक ने एक मकान या बंगला बना लिया, जो उसकी आवश्यकता को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर देता। यदि इस

पश्चवर्ती घटना को विचार में लिया जाए, तो मकान-मालिक को वाद से वंचित किया जाना चाहिए। क्या न्यायालय अपनी आँखें मूँद ले और किरायेदार को बेदखल कर दे? ऐसा न तो किराया प्रतिबंध अधिनियम की भावना है और न ही उसका उद्देश्य, जिसे पुनःप्रवेश के निरंकुश अधिकार पर अंकुश लगाने के लिए अधिनियमित किया गया था। अतः जब मकान-मालिक द्वारा व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर किरायेदार की निष्कासन हेतु किराया प्रतिबंध अधिनियम के अंतर्गत वाद दायर किया जाता है, तो उसकी आवश्यकता केवल वाद की तिथि पर ही नहीं, बल्कि अपीलीय डिक्री की तिथि पर, अथवा उस तिथि पर भी विद्यमान होनी चाहिए जब कोई उच्चतर न्यायालय मामले पर विचार करता है। कार्यवाही की प्रगति और एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय तक जाने के दौरान यदि ऐसी पश्चवर्ती घटनाएँ घटित होती हैं, जिनका संज्ञान लेने पर वादी वाद से वंचित हो जाएगा, तो न्यायालय को उनका परीक्षण और मूल्यांकन करना होगा तथा तदनुसार डिक्री को ढालना होगा। यह स्थिति अब किसी विवाद में नहीं है, इस न्यायालय के निर्णय *पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलु* में, जहाँ माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने न्यायालय की ओर से यह प्रतिपादित किया (एस.सी.सी. पृष्ठ 772, कंडिका 4)।

हम इस प्रतिपादन की पुष्टि करते हैं कि किसी पक्ष द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपचार को न्यायोचित, सार्थक तथा विधिक और तथ्यात्मक रूप से वर्तमान वास्तविकताओं के अनुरूप बनाने के लिए, न्यायालय अनेक मामलों में, कार्यवाही की स्थापना के पश्चात् घटित घटनाओं और विकासों का संज्ञान ले सकता है और अनेक मामलों में लेना ही चाहिए, बशर्ते कि दोनों पक्षों के प्रति निष्पक्षता के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए। .....

.....अतः अब यह निर्विवाद है कि जहाँ व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर कब्जा माँगा जाता है, वहाँ यह कहना सही नहीं होगा कि मकान-मालिक द्वारा प्रतिपादित आवश्यकता केवल वाद की तिथि पर ही विद्यमान होनी चाहिए; बल्कि वह उस समय तक भी विद्यमान रहनी चाहिए जब निष्कासन की अंतिम डिक्री या आदेश पारित किया जाता है। यदि इस बीच ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जो यह दर्शाती हों कि मकान-मालिक की आवश्यकता पूर्णतः संतुष्ट हो चुकी है, तो ऐसे मामले में उसका वाद असफल हो जाना चाहिए, और ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित होगा कि चूँकि किरायेदार के विरुद्ध निष्कासन की डिक्री या आदेश पारित कर दिया गया है,

इसलिए वह न्यायालय से पश्चवर्ती घटनाओं को संज्ञान में लेने का अनुरोध नहीं कर सकता। जब निष्कासन की डिक्री या आदेश अंतिम हो जाता है, तब वह ऐसा करने से वंचित हो सकता है। पसुपुलेटी मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का तरामल प्रकरण में दिया गया निर्णय अतिव्याप्त (ओवररूल्ड) माना जाना चाहिए और उसे केवल इस आधार पर भिन्न नहीं किया जा सकता कि मध्य प्रदेश अधिनियम में "किरायेदार" की परिभाषा आंध्र प्रदेश अधिनियम से भिन्न है। अतः उच्च न्यायालय द्वारा वादपत्र में स्वयं स्वीकार रूप से उल्लिखित इस पश्चवर्ती घटना को विचार में लेने से इनकार करना त्रुटिपूर्ण था।"

वर्तमान मामले में, समामेलन योजना का खंड 6 (विधिक कार्यवाहियाँ) यह स्पष्ट करती है कि प्रभावी तिथि, अर्थात् 01.04.2005 से, वे सभी कार्यवाहियाँ जिनमें अंतरक कंपनी एक पक्ष थी, अन्तरिति कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध उसी प्रकार और उसी सीमा तक जारी रखी जाएँगी, अभियोजित की जाएँगी तथा प्रवर्तित की जाएँगी, जिस प्रकार और जिस सीमा तक वे योजना के न बनाए जाने की स्थिति में अंतरक कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध जारी, अभियोजित तथा प्रवर्तित की जातीं। उपर्युक्त विशिष्ट धारा को, योजना की अन्य धाराओं के साथ पढ़े जाने पर, तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अंतरक कंपनी संपूर्ण रूप से अन्तरिति कंपनी में विलय हो गई थी, यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त निर्णय वर्तमान मामले पर प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं होता।

(ii) उनके द्वारा जिस अगले निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह है *सरस्वती इंडस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड बनाम सी.आई.टी.,* 1990 (पूरक) एस.सी.सी. 675। उस मामले में प्रश्न यह था कि इंडियन शुगर कंपनी का अपीलकर्ता-कंपनी, अर्थात् सरस्वती इंडस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड, के साथ समामेलन हो जाने पर, क्या इंडियन शुगर कंपनी ने आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 41(1) के प्रयोजनों के लिए अपनी पृथक पहचान बनाए रखी और अस्तित्व में बनी रही। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप से अभिनिर्धारित किया—

> **"5.** सामान्यतः, जहाँ परिवर्तन में केवल एक ही कंपनी सम्मिलित होती है और शेयरधारकों तथा लेनदारों के अधिकारों में परिवर्तन किया जाता है, वहाँ यह पुनर्गठन या व्यवस्था की योजना के अंतर्गत पुनर्संरचना के समान होता है। समामेलन में दो या अधिक कंपनियाँ विलय द्वारा अथवा एक कंपनी द्वारा दूसरी का अधिग्रहण किए जाने से एक में विलीन हो जाती हैं। 'पुनर्निर्माण' अथवा 'समामेलन' का कोई सटीक

विधिक अर्थ नहीं है। समामेलन का तात्पर्य दो या अधिक विद्यमान उपक्रमों के एक ही उपक्रम में मिश्रण से है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक मिश्रित कंपनी के शेयरधारक उस कंपनी में, जो संयुक्त उपक्रमों को आगे संचालित करने वाली होती है, पर्याप्त रूप से शेयरधारक बन जाते हैं। समामेलन या तो दो या अधिक उपक्रमों के एक नई कंपनी में अंतरण द्वारा हो सकता है, अथवा एक या अधिक उपक्रमों के किसी विद्यमान कंपनी में अंतरण द्वारा। सख्ती से कहें तो 'समामेलन' केवल किसी अन्य कंपनी की शेयर पूँजी के अधिग्रहण को सम्मिलित नहीं करता, यदि वह अन्य कंपनी अस्तित्व में बनी रहती है और अपना उपक्रम जारी रखती है; किंतु जिस संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह यह दर्शा सकता है कि उसमें ऐसा अधिग्रहण भी सम्मिलित करने का अभिप्राय है। देखिए: *हाल्सबरी का लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड*, (चतुर्थ संस्करण, खंड 7, कंडिका 1539)। दो कंपनियाँ मिलकर एक नई कंपनी का गठन कर सकती हैं, अथवा एक कंपनी का दूसरी में अवशोषण या मिश्रण हो सकता है—दोनों ही स्थितियाँ समामेलन की श्रेणी में आती हैं। जब दो कंपनियाँ विलय होकर इस प्रकार संयुक्त हो जाती हैं कि या तो एक तृतीय कंपनी का गठन होता है, या एक कंपनी दूसरी में अवशोषित अथवा मिश्रित हो जाती है, तब समामेलित होने वाली कंपनी अपनी पृथक पहचान खो देती है।"

6. *जनरल रेडियो एण्ड अप्लायंसेज़ कम्पनी लिमिटेड बनाम एम. ए. खादर* में दो कंपनियों के समामेलन के प्रभाव पर विचार किया गया था। मेसर्स जनरल रेडियो एण्ड अप्लायंसेज़ कम्पनी लिमिटेड एक ऐसे अनुबंध के अधीन किसी परिसर का किरायेदार था, जिसमें यह उपबंध था कि किरायेदार मकान-मालिक की सहमति के बिना उस परिसर अथवा उसके किसी भाग को किसी अन्य व्यक्ति को उप-किराये पर नहीं देगा। मेसर्स जनरल रेडियो एण्ड अप्लायंसेज़ कम्पनी लिमिटेड का समामेलन, समामेलन योजना तथा कंपनी अधिनियम, 1956 की धाराओं 391 और 394 के अधीन उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार, मेसर्स नेशनल एक्को रेडियो एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड के साथ कर दिया गया। समामेलन योजना के अधीन अंतरिती कंपनी, अर्थात् मेसर्स नेशनल एक्को रेडियो एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड ने अंतरक कंपनी के सभी हितों एवं अधिकारों, जिनमें पट्टाधिकार तथा किरायेदारी अधिकार भी सम्मिलित थे, का अधिग्रहण कर लिया और वे अंतरिती कंपनी में निहित हो गए। समामेलन योजना के अनुसरण में अंतरिती कंपनी उस

परिसर पर कब्जे में बनी रही, जिसे अंतरक कंपनी को किराये पर दिया गया था। मकान-मालिक ने यह कहते हुए बेदखली की कार्यवाही आरंभ की कि अंतरक कंपनी द्वारा परिसर को अनधिकृत रूप से उप-किराये पर दे दिया गया था। अंतरिती कंपनी ने यह प्रतिरक्षा ली कि बंबई उच्च न्यायालय के आदेश के अधीन दोनों कंपनियों के समामेलन के परिणामस्वरूप अंतरक कंपनी के सभी हित एवं अधिकार, जिनमें पट्टाधिकार तथा किरायेदारी अधिकार भी सम्मिलित थे, अंतरिती कंपनी में समाहित हो गए; अतः अंतरिती कंपनी विधिसम्मत किरायेदार बन गई और उप-किरायेदारी का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। किराया नियंत्रक तथा उच्च न्यायालय, दोनों ने मकान-मालिक के वाद को डिक्री कर दिया। अपील में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय के आदेश के आधार पर किए गए समामेलन के फलस्वरूप अंतरक कंपनी विधि की दृष्टि में अस्तित्वहीन हो गई और व्यावहारिक दृष्टि से भी उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। यह निर्णय प्रतिपादित करता है कि दोनों कंपनियों के समामेलन के पश्चात अंतरक कंपनी का पृथक अस्तित्व समाप्त हो गया और समामेलित कंपनी ने एक नवीन विधिक स्थिति प्राप्त कर ली; अतः दोनों कंपनियों को साझेदारों के रूप में अथवा उनकी देनदारियों एवं परिसंपत्तियों के संबंध में संयुक्त रूप से उत्तरदायी मानना संभव नहीं था।.....

..... समामेलन का वास्तविक प्रभाव एवं स्वरूप मुख्यतः विलय योजना की शर्तों पर निर्भर करता है। तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि जब दो कंपनियाँ समामेलित होकर एक में विलीन हो जाती हैं, तब अंतरक कंपनी अपनी पृथक विधिक सत्ता खो देती है, क्योंकि उसका व्यवसाय समाप्त हो जाता है। यद्यपि उनके परस्पर अधिकार एवं दायित्व समामेलन योजना के अधीन निर्धारित होते हैं, तथापि अंतरक कंपनी की निगमित सत्ता उस तिथि से समाप्त मानी जाती है, जिस दिन समामेलन प्रभावी किया जाता है।"

यह मामला समामेलन के पश्चात अंतरक कंपनी द्वारा आयकर के भुगतान के दायित्व से संबंधित है, अतः यह वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता।

(iii) श्री वेणुगोपाल द्वारा अत्यधिक निर्भर किया गया तृतीय निर्णय *हिंदुस्तान लीवर एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य* (2004) 9 एस.सी.सी. 438 है। उस मामले में टाटा ऑयल मिल्स कंपनी लिमिटेड (अंतरक कंपनी) का निगमित गठन

10.12.1917 को कंपनी अधिनियम, 1913 के अंतर्गत हुआ था। हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड (हस्तांतरणी कंपनी) का निगमित गठन भी उसी अधिनियम के अंतर्गत 17.10.1933 को हुआ था। अंतरक कंपनी का हस्तांतरणी कंपनी के साथ समामेलन की योजना संबंधित कंपनियों के निदेशक मंडलों द्वारा 19.03.1993 को विनिर्मित एवं अनुमोदित की गई। 03.03.1994 को अंतरक कंपनी का हस्तांतरणी कंपनी के साथ समामेलन, कुछ संशोधनों के साथ, उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा अनुमोदित किया गया। उक्त निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर अपील को खंडपीठ ने 18.05.1994 को निरस्त कर दिया। खंडपीठ के उक्त निर्णय के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका को इस न्यायालय ने 24.10.1994 को निरस्त कर दिया। समामेलन का विधिवत् तैयार आदेश उच्च न्यायालय द्वारा 24.11.1994 को अनुमोदित किया गया।न्यायालय के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने पर, महाराष्ट्र के कंपनी पंजीयक ने दोनों कंपनियों के समामेलन का प्रमाणपत्र जारी किया। कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 394 के अंतर्गत पारित समामेलन आदेश पर आरोपित किए जाने वाले मुद्रांक शुल्क के संदर्भ में, अपीलकर्ता—हिंदुस्तान लीवर—ने बॉम्बे उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर कर बॉम्बे मुद्रांक अधिनियम, 1958 की धारा 2(ग)(iv) के प्रावधानों की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी। खंडपीठ ने उक्त प्रावधान की वैधता को यथावत् रखा तथा रिट याचिका को निरस्त कर दिया। यह निर्णय मुख्यतः समामेलन आदेश पर लगाए गए मुद्रांक शुल्क के भुगतान से संबंधित है और वर्तमान प्रकरण में सहायक नहीं है।

14. श्री वेणुगोपाल द्वारा किए गए निवेदनों तथा उपर्युक्त उद्धृत निर्णयों के संदर्भ में, कंपनी अधिनियम की धारा 391 से 394 के अंतर्गत किसी कंपनी का दूसरी कंपनी के साथ समामेलन, उस स्थिति में जब कंपनी किसी भवन की किरायेदार हो और अधिनियम के लाभों की अधिकारी हो, तथा उस स्थिति में जब समामेलित होने वाली कंपनी भवन की मकान-मालिक हो—दोनों में भिन्न विधिक परिणाम उत्पन्न करता है। जब कोई कंपनी, जो किरायेदार है, किसी अन्य कंपनी के साथ समामेलित होती है, तब समामेलित होने वाली (हस्तांतरक) कंपनी अपनी पृथक पहचान खो देती है। विधि की दृष्टि से यह समामेलित कंपनी द्वारा पट्टाधिकार के अंतर्गत अपने अधिकार का अंतरण माना जाएगा, भले ही इसे अनैच्छिक अंतरण माना जाए। ऐसा समामेलन, यदि वह मकान-मालिक की लिखित सहमति के बिना हो, तो अधिनियम की धारा 10(2)(ii)(a) के दायरे में आएगा और किरायेदारी के जब्ती का कारण बनेगा [देखें *जनरल रेडियो एंड अप्लायंसेज कंपनी लिमिटेड एवं अन्य बनाम एम.ए. खदर (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा (1986) 2 एस.सी.सी. 656 तथा सिंगर*

*इंडिया लिमिटेड बनाम चंदर मोहन चड्ढा एवं अन्य (2004) 7 एस.सी.सी. 1]*। वर्तमान मामले में, जहाँ भवन का मकान-मालिक कंपनी किसी अन्य कंपनी में विलीन हो जाती है, वहाँ अधिनियम या संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत मकान-मालिक के किसी अधिकार का अपहरण नहीं होता।

15. जिस स्थिति में कोई कंपनी किरायेदार हो, वहाँ समामेलन, मकान-मालिक को बिना उसकी सहमति के उप किरायेदारी के आधार पर निष्कासन हेतु वाद दायर करने का कारण प्रदान कर सकता है। वर्तमान मामले में, किरायेदार की निष्कासन हेतु आवेदन दिनांक 03.04.1987 को दायर किया गया था। उक्त कारण-कार्यवाही का समामेलन से कोई संबंध नहीं था, चाहे वह आवेदन दायर करने से पूर्व हुआ हो या पश्चात्। किराया नियंत्रक ने दिनांक 09.04.1992 को निष्कासन का आदेश पारित किया। किरायेदार की अपील का निस्तारण अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 10.04.2003 को किया गया। मकान-मालिक के अधिकारों का निर्धारण निष्कासन हेतु दायर आवेदन की तिथि के अनुसार किया जाना है। निष्कासन के आदेश ने मकान-मालिक के अधिकारों को अंतिम रूप प्रदान कर दिया। किरायेदार ने दिनांक 18.08.2003 को उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की। पुनरीक्षण याचिका लंबित रहने के दौरान, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा समामेलन का आदेश दिनांक 26.02.2006 को पारित किया गया, जो एक पश्चातवर्ती घटना थी। पुनरीक्षण याचिका का निस्तारण उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 05.08.2009 को किया गया। जैसा कि श्री परासरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने सही रूप से इंगित किया, यदि पुनरीक्षण याचिका का निस्तारण 26.02.2006 से पूर्व हो गया होता, तो यह विवाद उत्पन्न ही नहीं होता। पुनरीक्षण याचिका के निस्तारण में हुई विलंब से, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पुष्ट किराया नियंत्रक के आदेश के अधीन मकान-मालिक के निहित अधिकारों को प्रभावित नहीं किया जाना चाहिए।

16. आगे, वर्तमान मामले में पूर्ववर्ती मकान-मालिक का उत्तरदाता के साथ हुआ समामेलन केवल संबंधित पट्टाधिकार संपत्ति के अंतरण तक सीमित नहीं था, बल्कि पूर्ववर्ती मकान-मालिक के संपूर्ण व्यवसाय का अंतरण था, जिसमें अधिग्रहीत व्यवसाय के लिए पट्टे पर लिए गए परिसरों की आवश्यकता भी सम्मिलित थी। समामेलन योजना में निहित विभिन्न धाराओं तथा उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए, यद्यपि श्री वेणुगोपाल द्वारा उद्धृत निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांत से कोई विवाद नहीं है, तथापि वह वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता।

17. जहाँ तक इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा समामेलन की पश्चातवर्ती घटना को संज्ञान में लेने का अनुरोध है, प्रारंभ में यह निवेदित है कि पश्चातवर्ती घटनाएँ स्वतः इस न्यायालय द्वारा संज्ञान में लिए जाने योग्य नहीं होतीं और न ही अधीनस्थ न्यायालयों के लिए कोई अनिवार्य निर्देश होती हैं। कोई पश्चातवर्ती घटना कुछ परिस्थितियों में विचारार्थ ली जा सकती है तथा अन्य परिस्थितियों में उसे न्यायिक परीक्षण के दायरे से बाहर रखा जाना उचित हो सकता है। श्री परासरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने इंगित किया कि किराया अधिनियमों के अंतर्गत दो प्रकार के निर्णय पाए जाते हैं—एक श्रेणी ने पश्चातवर्ती घटनाओं को ध्यान में रखकर प्रतिकर का स्वरूप निर्धारित किया है, जबकि दूसरी श्रेणी ने पश्चातवर्ती घटनाओं को ध्यान में रखने से इंकार किया है। उनके अनुसार, वर्तमान मामला उन निर्णयों की श्रेणी में आता है, जिनमें पश्चातवर्ती घटना को विचार में नहीं लिया गया। वर्तमान मामले में, उन्होंने निवेदन किया कि पश्चातवर्ती घटनाओं का उस निष्कासन आदेश पर कोई मौलिक प्रभाव नहीं पड़ता, जो मकान-मालिक की अपने स्वयं के उपयोग तथा/या अपने व्यवसाय के प्रयोजन के लिए आवश्यकता के आधार पर पारित किया गया है। उनके अनुसार, अतः पश्चातवर्ती घटना को विचार में नहीं लिया जाना चाहिए। *शकुन्तला बाई एवं अन्य बनाम नारायण दास एवं अन्य* (2004) 5 एस.सी.सी. 772 में यह प्रतिपादित किया गया कि जिन मामलों में निष्कासन की डिक्री पारित हो चुकी हो और अपील लंबित रहने के दौरान मकान-मालिक की मृत्यु हो जाए, वहाँ डिक्री के अधीन जो लाभ मकान-मालिक के पक्ष में अर्जित हुआ है, वह उसकी संपत्ति को प्राप्त होगा और उसके विधिक प्रतिनिधि उस डिक्री से प्राप्त लाभ की रक्षा हेतु आगे की कार्यवाहियों, जैसे अपील, का प्रतिवाद करने के अधिकारी होंगे।

18. हम श्री परासरन से सहमत हैं कि सामान्य परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के पश्चात, मकान-मालिक परिसर का कब्जा प्राप्त कर लेता, यदि अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित स्थगनादेश के कारण किरायेदार का परिसर पर निरंतर कब्जा न रहता। ऐसी स्थिति में यह सुविख्यात सिद्धांत लागू होगा कि न्यायालय का कोई कार्य किसी व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाएगा। अतः मकान-मालिक के उत्तराधिकारी, किरायेदार द्वारा दायर अपील का पूर्णतः प्रतिवाद करने के अधिकारी होंगे। जब कोई कंपनी विलय के कारण, चाहे परिसमापन के साथ या बिना, विघटित मानी जाती है, तब निष्कासन की डिक्री के अधीन उसके अधिकार विलयित कंपनी को प्राप्त हो जाते हैं।

19. आगे, *उषा पी. कुवेलकर एवं अन्य बनाम रविन्द्र सुब्राय दल्वी* (2008) 1

एस.सी.सी. 330 में, इस न्यायालय ने उन मामलों के बीच स्पष्ट भेद किया, जहाँ मृत्यु डिक्री पारित होने के बाद हुई तथा जहाँ मृत्यु डिक्री पारित होने के दौरान हुई। कंडिका 14 में यह कहा गया कि—

> "..... उसी निर्णय में, इस न्यायालय द्वारा *पी. वी. पापन्ना बनाम के. पद्मनाभैया* प्रकरण में व्यक्त विपरीत मत को *ओबिटर* (आकस्मिक अभिव्यक्ति) के रूप में माना गया। इस न्यायालय ने *शकुंतला बाई* प्रकरण में *शांतिलाल ठाकोरदास बनाम चिमनलाल मगनलाल तेलवाला* के निर्णय का उल्लेख करते हुए विशेष रूप से यह अभिलक्षित किया कि शांतिलाल ठाकोरदास प्रकरण में व्यक्त मत किसी भी प्रकार से *फूल रानी बनाम नौबत राय अहलूवालिया* में व्यक्त उस सिद्धांत को प्रभावित नहीं करता, जिसके अनुसार यदि भूस्वामी की मृत्यु उसके पक्ष में कब्जा (निष्कासन) की डिक्री पारित होने के पश्चात होती है, तो उसके विधिक उत्तराधिकारी अपील जैसे आगे की कार्यवाहियों का प्रतिवाद करने तथा डिक्री के अंतर्गत प्राप्त लाभ का उपभोग करने के अधिकारी होते हैं। वर्तमान मामले में भी यह स्पष्ट है कि मूल भूस्वामी, प्रभाकर गोविंद सिनाई कुवेलकर, का निधन अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा निष्कासन आदेश पारित किए जाने के पश्चात ही हुआ। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि भूस्वामी ने कब्जा केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि अपने परिवार के सदस्यों के लिए भी माँगा था। अधिनियम की धारा 23(1)(क)(i) में भूस्वामी के परिवार के सदस्यों के अधिभोग के संबंध में स्पष्ट प्रावधान है। इस दृष्टिकोण से, उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क अस्वीकार किया जाना चाहिए।"

20. जहाँ तक परवर्ती घटनाओं का संबंध है, इस न्यायालय ने *गया प्रसाद बनाम प्रदीप श्रीवास्तव* (2001) 2 एस.सी.सी. 604, पृष्ठ 609, कंडिका 10 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया है :

> "10. हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि मकान-मालिक की आवश्यकता की सद्भावना के निर्णय के लिए निर्णायक तिथि उसकी निष्कासन याचिका दायर करने की तिथि है। उससे पूर्व की परिस्थितियाँ संभवतः उसे उस निर्णायक तिथि तक पहुँचने में सहायक रही होंगी। यदि याचिका दायर होने के पश्चात की प्रत्येक परवर्ती घटना को मकान-मालिक द्वारा अभिव्यक्त आवश्यकता की सद्भावना का आकलन करने के लिए ध्यान में रखा जाए, तो संभवतः हमारी न्यायिक प्रणाली की दुर्भाग्यपूर्ण विलंबित प्रक्रिया के

कारण वह स्थिति उत्पन्न ही न हो सके। 23 वर्षों के दौरान, जब मकान-मालिक ने इस आधार पर निष्कासन की कार्यवाही प्रारंभ की कि उसे भवन की आवश्यकता है, न तो उससे और न ही उसके पुत्र से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे निष्क्रिय बैठे रहें और कोई कार्य न करें; अन्यथा, कोई नया कार्य या व्यवसाय प्रारंभ करना इस जोखिम पर होगा कि वह भवन पर अधिवास की अपनी आवश्यकता को त्याग बैठेंगे। भवन पर अधिवास की अपनी आवश्यकता को त्याग देने के जोखिम पर। यह एक कठोर वास्तविकता है कि वाद-विवाद की अवधि जितनी लंबी होगी, उस दीर्घ अंतराल के दौरान उतनी ही अधिक नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी। यदि कोई युवा उद्यमी नया व्यवसाय प्रारंभ करने का निर्णय लेता है और उसी आधार पर वह या उसका पिता भवन से किरायेदार का निष्कासन चाहता है, तो प्रस्तावित व्यवसाय वाद की पारंपरिक दीर्घ अवधि के दौरान उत्पन्न परवर्ती घटनाओं से समाप्त नहीं हो जाएगा। उसकी आवश्यकता धूमिल अवश्य हो सकती है, परंतु वह बनी रहती है। आवश्यकता केवल इतनी है कि उस पर जमी धूल हटाकर वास्तविकता को देखा जाए। यह घोर अन्यायपूर्ण होगा कि कोई आवेदक, जो सभी पूर्ववर्ती न्यायिक स्तरों से होकर अंतिम चरण तक पहुँचने ही वाला हो, उसे केवल इस आधार पर वंचित कर दिया जाए कि विचाराधीन वाद के दौरान कुछ परवर्ती घटनाएँ घटित हो गईं, क्योंकि प्रतिपक्ष ने प्रकरण को अत्यधिक लंबी अवधि तक लंबित रखने में सफलता प्राप्त कर ली।

कंडिका 15 में आगे यह कहा गया :

"15. न्यायिक विलंब, जिसके कारण दुर्भाग्यवश हमारी न्याय प्रणाली कुख्यात हो चुकी है, वाद को प्रारंभ से लेकर अंतिम निष्कर्ष तक अनेक वर्षों तक खींच देता है; यह प्रणाली की एक व्याधि है। इस दीर्घ अंतराल के दौरान पक्षकारों के संबंध में तथा वाद के विषय-वस्तु से संबंधित अनेक घटनाएँ घटित होना स्वाभाविक है। यदि इस प्रणालीगत व्याधि के कारण वाद-हेतुक को प्रत्येक परवर्ती घटना में समाहित कर दिया जाए, तो इससे वादी का विश्वास, जो पहले ही प्रभावित हो चुका है, और अधिक विचलित होगा।"

यदि वर्षों बीत जाने के पश्चात परवर्ती घटनाओं को सामान्यतः विचार में लिया जाए, तो अनेक मामलों में गंभीर अन्याय होगा, जब तक कि ऐसी परवर्ती घटनाओं को ध्यान में लेने के लिए अत्यंत प्रभावी और असाधारण परिस्थितियाँ न हों।

21. *श्रीमती फूल रानी एवं अन्य बनाम श्री नौबत राय अहलूवालिया* (1973) 1 एस.सी.सी. 688, पृष्ठ 693, में इस न्यायालय ने कंडिका 9, 10, 11 एवं 12 में उठाए गए प्रश्नों पर विचार करते हुए कंडिका 13 एवं 14 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया :

> "**13.** हमारे समक्ष अनेक निर्णय उद्धृत किए गए, परंतु जो निम्नलिखित श्रेणियों में आते हैं, उन्हें अलग किया जाना चाहिए—
>
> (i) वे मामले जिनमें वादी की मृत्यु उस समय हुई जब उसके पक्ष में कब्जे का डिक्री पारित हो चुका था; उदाहरणार्थ, असफल किरायेदार द्वारा दायर अपील लंबित रहने के दौरान;
>
> (ii) वे मामले जिनमें डिक्रीधारी मकान-मालिक की मृत्यु को निष्पादन कार्यवाही में प्रतिरक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया; तथा
>
> (iii) वे मामले जिनमें वादी नहीं बल्कि उत्तरदाता—किरायेदार—की मृत्यु कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान हुई और किरायेदार के उत्तराधिकारियों ने यह तर्क उठाया कि निष्कासन की कार्यवाही उनके विरुद्ध जारी नहीं रह सकती।
>
> 14. प्रथम श्रेणी के मामले इस कारण पृथक् हैं कि उनमें दिए गए निर्णय इस आधार पर हैं—यद्यपि यह सदा स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया—कि डिक्री के अंतर्गत जो लाभ वादी के पक्ष में उत्पन्न हो चुका है, वह उसकी संपत्ति को प्राप्त होता है, और इसलिए उसके विधिक प्रतिनिधि उस लाभ को चुनौती देने वाली आगे की कार्यवाहियों, जैसे अपील, का प्रतिरक्षण करने के अधिकारी होते हैं।"

22. विशेष रूप से, किराया अधिनियमों द्वारा विनियमित मामलों में परवर्ती घटनाओं को विचार में लेना, वर्तमान जैसे मामलों में, मकान-मालिकों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकता है। इसी संदर्भ में, *जोगिन्दर पाल बनाम नवल किशोर बेहल* (2002) 5 एस.सी.सी. 397 के कंडिका 9 में यह प्रतिपादित किया गया : ...

> "**9.** किराया नियंत्रण संबंधी विधियां प्रायः किरायेदारों के पक्ष में अधिक झुकी हुई होती हैं, क्योंकि उन्हें समाज के कमजोर वर्ग के रूप में देखा जाता है, जिन्हें शोषण तथा लोभी भूस्वामियों की कुटिल युक्तियों से संरक्षण की आवश्यकता होती है। विधायिका की इस मंशा का, विधियों की व्याख्या करते समय न्यायालयों द्वारा

सम्मान किया जाना चाहिए। किन्तु यह विधायिका के प्रति अन्यायपूर्ण होगा यदि यह मान लिया जाए कि वह केवल किरायेदारों के पक्ष में ही झुकती है और उनके प्रति न्याय करते-करते भूस्वामियों के साथ अन्याय करने तक पहुँच जाती है। विधायिका किरायेदारों तथा भूस्वामियों—दोनों के प्रति समान रूप से न्यायसंगत है।....."

23. श्री परासरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह इंगित किया गया कि वर्तमान मामले में किरायेदार एक समृद्ध कंपनी है और वह छोटे संपत्तियों के किरायेदारों के कमजोर वर्ग की श्रेणी में नहीं आता। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि परवर्ती घटनाओं को विचार में लेने का सिद्धांत केवल अपीलों तक सीमित होना चाहिए, क्योंकि अपील मूल कार्यवाही की निरंतरता होती है और अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। (देखें: *लक्ष्मेश्वर प्रसाद शुक्ल एवं अन्य बनाम केशवर लाल चौधरी एवं अन्य,* ए.आई.आर. 1941 एफ.सी. 5, पृष्ठ 13)।

24. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका लंबित रहने के दौरान कंपनी के विलय की परवर्ती घटना घटी। यद्यपि कुछ मामलों में, उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के दौरान अथवा इस न्यायालय के समक्ष प्रकरण लंबित रहने के दौरान घटित परवर्ती घटनाओं को इस न्यायालय ने विचार में लिया है, तथापि अपील और पुनरीक्षण में अधिकार-क्षेत्र के प्रयोग के बीच का अंतर उन मामलों में न तो उठाया गया और न ही निर्णयित किया गया।

25. अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत पुनरीक्षण में, न्यायालय सीमित अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करता है, न कि अपीलीय न्यायालय की भाँति व्यापक शक्तियों का। *मेसर्स श्री राजा लक्ष्मी डाइंग वर्क्स एवं अन्य बनाम रंगास्वामी चेट्टियार* (1980) 4 एस.सी.सी. 259, पृष्ठ 262 में यह प्रतिपादित किया गया :–

"..... अतः, धारा 25 में प्रयुक्त व्यापक भाषा के बावजूद, उच्च न्यायालय को केवल इस कारण कि वह अधीनस्थ प्राधिकारी के निष्कर्ष से सहमत नहीं है, तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। तमिलनाडु भवन (पट्टा एवं किराया नियंत्रण) अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति, यद्यपि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण शक्ति जितनी संकीर्ण नहीं है, तथापि न्यायमूर्ति उंटवालिया द्वारा *दत्तोपंत गोपालराव देवकटे बनाम विठलराव मरुथिराव जनागावल* में प्रयुक्त शब्दों में, "यह इतनी व्यापक नहीं है कि उच्च

न्यायालय को प्रथम अपील का दूसरा न्यायालय बना दे।"

26. श्री परासरन ने पुनः प्रतिपादित किया कि उच्च न्यायालय, जो केवल सीमित अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करता है और अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ नहीं रखता, पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के दौरान घटित परवर्ती घटना को विचार में नहीं ले सकता; वह केवल पुनरीक्षणाधीन आदेश की वैधता पर ही निर्णय करेगा।

27. "अपने स्वयं के उपयोग/अधिवास" अभिव्यक्ति का व्यापक एवं उदार अर्थ में व्याख्यायित किया जाना चाहिए। जब कोई कंपनी अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहती है और किसी अन्य कंपनी के साथ विलय करती है, तो वह भी "अपने स्वयं के उपयोग" का ही एक मामला होगा। यदि कोई मकान-मालिक, जो एक कंपनी है, अपनी ही संपत्ति का उपयोग करने के लिए किसी अन्य कंपनी के साथ विलय कर अपने व्यावसायिक हित को आगे नहीं बढ़ा सकता, तो यह अन्यायपूर्ण, अनुचित एवं अविवेकपूर्ण होगा। आगे, किराया नियंत्रण अधिनियम के प्रावधानों की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जिससे विधायिका के उद्देश्य को विफल किया जाए। यदि अपने स्वयं के उपयोग हेतु परिसर की आवश्यकता रखने वाला मकान-मालिक किसी अन्य कंपनी के साथ विलय कर अपने व्यवसाय का विस्तार करता है, तो किराया नियंत्रण संबंधी विधायन का कंपनी अधिनियम के प्रावधानों से टकराव संभव है। कंपनी अधिनियम तथा किराया नियंत्रण अधिनियम की समन्वित व्याख्या की जानी चाहिए और ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जिससे एक अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार दूसरे अधिनियम द्वारा नष्ट हो जाए।

28. जैसा कि पूर्व में कहा गया है, निष्कासन आदेश पारित होने के पश्चात मकान-मालिक की मृत्यु मात्र से ही डिक्री के अधीन अर्जित अधिकार स्वतः समाप्त नहीं हो जाता। वे मामले जिनमें परवर्ती घटना को किरायेदार के पक्ष में विचार में लिया गया है, ऐसे मामले थे जहाँ अपील या पुनरीक्षण की लंबित अवधि के दौरान मकान-मालिक की आवश्यकता पूर्णतः संतुष्ट हो गई थी, पूरी हो चुकी थी अथवा समाप्त हो गई थी। वर्तमान मामले में मकान-मालिक को परिसर की आवश्यकता अपने स्वयं के व्यवसाय तथा अपने कर्मचारियों के आवासीय प्रयोजनों के लिए थी। वह आवश्यकता अंतरक कंपनी के संपूर्ण व्यवसाय के अन्तरिति कंपनी में स्थानांतरित हो जाने के कारण अन्तरिति कंपनी के लिए भी विद्यमान है। कंपनी की आवश्यकता न तो संतुष्ट हुई है और न ही समाप्त हुई है। निष्कासन का अधिकार पहले ही डिक्री में परिणत होकर स्थिर हो चुका है, जिसके अंतर्गत समामेलन के

पश्चात कंपनी ने विधि द्वारा निहित अनैच्छिक हस्तांतरण के माध्यम से अधिकार प्राप्त किया है। चूँकि निष्कासन की डिक्री स्थगनादेश के अधीन थी, उसका निष्पादन नहीं हो सका। जैसे ही स्थगनादेश निरस्त या समाप्त होगा, उत्तरदाता डिक्री के निष्पादन का अधिकारी होगा। वर्तमान मामले में समामेलन आदेश ने उक्त अधिकार को भी संरक्षित रखा है। योजना की धारा 1.7 के अनुसार समस्त परिसंपत्तियाँ अन्तरिति कंपनी में निहित हो जाती हैं। धारा 6 के अनुसार किसी भी विषय के संबंध में कोई वाद, याचिका, अपील या अन्य कार्यवाही परिसंपत्तियों/दायित्वों के हस्तांतरण अथवा योजना में निहित किसी प्रावधान के कारण न तो लुप्त होगी और न ही निरस्त मानी जाएगी तथा न ही प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगी, बल्कि ऐसी कार्यवाहियाँ अन्तरिति कंपनी द्वारा या उसके विरुद्ध उसी प्रकार और उसी सीमा तक जारी, संचालित एवं प्रवर्तित की जा सकेंगी, जैसे कि योजना निर्मित न हुई होती। उपर्युक्त के आलोक में समामेलन योजना के प्रावधानों तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 नियम 16 के संचालन के कारण डिक्रीधारक डिक्री के निष्पादन का अधिकारी माना जाएगा। अधिनियम की धारा 18 में उपबंध है कि निष्कासन आदेश का निष्पादन नियंत्रक द्वारा इस प्रकार किया जाएगा मानो वह किसी दीवानी न्यायालय का आदेश हो और इस प्रयोजनार्थ नियंत्रक को दीवानी न्यायालय की समस्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। अतः दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 नियम 16 का सिद्धांत लागू होगा। किसी भी स्थिति में, जैसा कि उत्तरदाता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उचित रूप से इंगित किया गया है, दीवानी प्रक्रिया संहिता के वे प्रावधान जो लोकहित को आगे बढ़ाते हैं अथवा न्यायसंगत, निष्पक्ष एवं युक्तिसंगत प्रक्रिया सुनिश्चित करते हैं तथा जो अधिनियम से प्रतिकूल नहीं हैं, वे निष्कासन आदेश के निष्पादन पर लागू होंगे।

29. मकान-मालिक का किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार डिक्री में समाहित हो चुका था। इसके अतिरिक्त, समामेलन निष्कासन की डिक्री पारित होने के काफी समय बाद हुआ और डिक्री के अधीन अधिकार परिपक्व होकर उसी में विलीन हो चुके थे। किरायेदार 5,274 वर्ग फुट निर्मित क्षेत्रफल वाली एक बड़ी इमारत सहित तथा उससे संलग्न 61,872 वर्ग फुट रिक्त भूमि पर, वर्ष 1965 से लगभग 45 वर्षों की अवधि तक, विस्तृत संपत्ति पर काबिज रहा है। अपीलकर्ता प्रारंभ में भवन के लिए 400/- रुपये तथा फर्नीचर एवं स्थापनाओं के लिए 300/- रुपये प्रतिमाह किराया दे रहा था, जिसे 1970 के दशक में क्रमशः 400/- रुपये और 475/- रुपये कर दिया गया। किराया नियंत्रक ने दिनांक 18.10.1994 के आदेश द्वारा उचित किराया 6,465/- रुपये निर्धारित किया, जिसे

अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपील में अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 19.12.2001 के आदेश द्वारा बढ़ाकर 7,852/- रुपये कर दिया।

30. पूर्ववर्ती कंपनी की परिसंपत्तियाँ समामेलित कंपनी में निहित हो गईं। डिक्री एक परिसंपत्ति होती है। उक्त परिसंपत्ति पूर्ववर्ती कंपनी से समामेलित कंपनी को प्राप्त हो गई। निष्कासन पूर्ववर्ती कंपनी की अपनी आवश्यकता के आधार पर की गई थी। उक्त व्यवसाय अब समामेलित कंपनी द्वारा संचालित किया जाएगा। यदि समामेलित कंपनी को उक्त लाभ से वंचित किया जाता है, तो यह समामेलन के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा और कंपनी अधिनियम के अधीन अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित समामेलन आदेश को निष्प्रभावी कर देगा।

31. इसके अतिरिक्त, भवन के साथ पट्टे पर दी गई रिक्त भूमि ही हदबंदी अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों का विषय-वस्तु है। भूस्वामी ने अधिनियम की धारा 21 के अधीन छूट का आदेश, शासनादेश (आर.टी.) संख्या 2900 दिनांक 04.11.1981 तथा शासनादेश (आर.टी.) संख्या 852 दिनांक 25.06.1986 के माध्यम से प्राप्त किया है। यह छूट स्पष्ट रूप से उद्योग के विस्तार के लिए प्रदान की गई थी, जो एक लोक उद्देश्य है। यह उल्लेखनीय है कि धारा 21 के अंतर्गत केवल तब, जब लोकहित की आवश्यकता संतुष्ट होती है, सरकार को छूट प्रदान करने की शक्ति प्राप्त होती है। यह भी इंगित किया गया है कि जब भूस्वामी ने हदबंदी अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत छूट का आदेश प्राप्त किया, तब किरायेदार ने उस छूट को निरस्त करने तथा उक्त भूमि को अपने पक्ष में आवंटित करने हेतु सरकार के समक्ष आवेदन किया। उसने छूट के आदेश को 1987 की रिट याचिका संख्या 6434 के माध्यम से उच्च न्यायालय में चुनौती दी, जिसे दिनांक 18.04.1991 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया, तथा इसके विरुद्ध दायर 1992 की रिट अपील संख्या 1177 को भी उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 12.07.1993 के आदेश से खारिज कर दिया गया।

32. किरायेदार की ओर से धारा 10, उपधारा 3 के प्रथम प्रावधान पर जो निर्भरता रखी गई है, वह एक नवीन निवेदन है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है—

> "बशर्ते कि जो व्यक्ति किरायेदारी के प्रारंभ के पश्चात जीवित पक्षकारों के मध्य लिखित लिखत द्वारा मकान-मालिक बनता है, वह उस तिथि से तीन माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व, जिस तिथि को वह लिखत पंजीकृत हुआ, इस उपधारा के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकारी नहीं होगा।"

यह प्रावधान लंबित पुनरीक्षणों पर लागू नहीं होता। इसके विपरीत, यह केवल किराया नियंत्रक के समक्ष प्रस्तुत आवेदन पर ही लागू होता है। यह प्रावधान इस बात पर बल देता है कि मकान-मालिक भवन का "अधिवास नहीं कर रहा है।" यदि मकान-मालिक अन्य संपत्तियों का स्वामी हो परंतु उनका अधिवास न करता हो, तब भी यह प्रावधान लागू नहीं होगा। किराया अधिनियम स्वामित्व या शीर्षक से नहीं, बल्कि अधिवास के अधिकार से संबंधित है। अन्यथा भी, यह न्यायालय इस नवीन निवेदन को प्रथम बार उठाए जाने की अनुमति नहीं देगा। किसी भी स्थिति में, अभिलेख पर अतिरिक्त तथ्यों एवं दस्तावेजों को रखने की अनुमति हेतु दायर आवेदन में यह तो कहा गया है कि समामेलित कंपनी अन्य भूमि की स्वामी है, परंतु यह कथन नहीं किया गया कि वह उन भूमियों का अधिवास कर रही है; अतः धारा 10(3)(iii) का प्रावधान लागू नहीं होता।

33. अधिनियम का उद्देश्य अधिवास में स्थित किरायेदार की अनुचित निष्कासन को रोकना तथा किरायों को नियंत्रित करना है। इसी प्रकार, जब मकान-मालिक संपत्ति को अपने स्वयं के प्रयोजन के लिए चाहता है, तब अधिनियम अन्य संपत्तियों के स्वामित्व को नहीं, बल्कि उन पर मकान-मालिक के अधिवास के तथ्य को ध्यान में रखता है। अधिनियम उसमें निर्दिष्ट युक्तियुक्त आधारों पर निष्कासन की अनुमति देता है। संभव है कि ऐसे मामले हों जहाँ किरायेदार की निष्कासन युक्तियुक्त प्रतीत हो, परंतु वह आवश्यकता अधिनियम की धारा 10 के किसी भी उपबंध में कठोरतापूर्वक न समाती हो जिससे मकान-मालिक को निष्कासन का अधिकार प्राप्त हो। अतः धारा 29 सरकार को ऐसे मामलों में भवन को छूट प्रदान करने का अधिकार देती है, जिससे मकान-मालिक सामान्य दीवानी वाद के माध्यम से किरायेदार की निष्कासन का अधिकारी हो सके।

34. वर्तमान मामला ऐसा है जहाँ निष्कासन का आदेश दो प्राधिकारियों द्वारा पारित किया गया तथा उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, और वह न्यायसंगत, उचित एवं समतापूर्ण है। अतः हमें हस्तक्षेप का कोई वैध आधार नहीं मिलता; इसके विपरीत, हम प्राधिकारियों तथा उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत हैं। यह ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता-किरायेदार चार दशकों से अधिक समय से परिसर में अधिवास कर रहा है, हम उसे 31.12.2010 तक कब्जा सौंपने का समय प्रदान करते हैं, इस सामान्य शर्त के अधीन कि वह चार सप्ताह की अवधि के भीतर एक प्रतिज्ञा पत्र प्रस्तुत करेगा। उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, अपील असफल होती है और निरस्त की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

अपील निरस्त।

एन. जे.

**खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।**